* ॐ *

धु-गुण—परीक्षा

पिबन्ति जलदः स्वयमेव नोदकम्,
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षः ।
धाराधरो वर्षति नात्महेतोः,
परोपकाराय सतां विभूतयः ॥

मुद्रक व प्रकाशक—

पद्मसिंह जैन,

संचालक जैनागम प्रकाशक मण्डल,
जौहरी बाजार, आगरा।

मिलने का पता—
जैन पुस्तक भंडार,
२२२, मानपाड़ा—आगरा।

वीर सं० २४५७
वि० सं० १९८७
ई० सन् १९३०

द्वितियावृत्ति

मूल्य
=) आना

भूमिका ।

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष कपिलादिषु ।
युक्तिमद्वचन यस्य, तस्य कार्य परिग्रह ॥

प्रिय पाठकगण ! आपके सामने यह पुस्तक "साधु गुण परीक्षा" उपस्थित है । आप चारो ओर से साधुओ के सुधार का प्रयत्न किया जारहा है । देखिये पहिले साधुजन जो ज्ञान का उपदेश स्वय औरो को देते थे आज वे ही स्वय घर घर एक २ पैसा भिक्षा माग रहे हैं। जमाने समय तेरी भी क्या विचित्र गति है । हा तब कवि ने ठीक ही तो कहा है कि —

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

यद्यपि आज भारतवर्ष में साधुओं की कमी नहीं है तथापि सच पूछिये तो सच्चे साधु बड़ी कठिनता से ढूंढे मिलेंगे । यही कारण है कि आज भारतवर्ष को यह भार रूप दीख रहे हैं बस हमने इसी उद्देश्य के सुधारन के निमित्त ही इस पुस्तक का प्रकाशित करा है कि साधु जिनमें सब तरह के सुधार होने की सम्भावना है उन्हें इस पुस्तक से बहुत ही लाभ होगा । इस पुस्तक के तैयार करने मे श्री स्वामी रामऋषिजी महाराज जो उर्दू पुस्तक साधु गुणपरीक्षा से ही अधिक सहायता ली गई है जिसके लिये स्वामीजी महाराज के हम कृतज्ञ हैं ।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने का हमारा यही उद्देश्य है कि आप इसको पढ़कर निरक्षर, नशेबाज, कपटी, और क्रोधी आदि दुर्गुणों सहित जो कल्पित साधु होंय उनके कुसग से आप स्वय बच और अपने साथियों को बचाव और जो सच्चे साधु हो उनकी संगति से लाभ उठाय ।

ता० ?-११-३०

निवेदक —
पदमसिंह जैन
सचालक- "जैनपत्र प्रकाश," आगरा ।

* श्री वीतरागाय नमः *

साधु-गुण-परीक्षा।

प्रश्न—आप साधु किसको कहते हैं ?

उत्तर—(साधयन्ति ज्ञानादिशक्तिभिर्मोक्षमिति साधवः) ज्ञानादि शक्तियों द्वारा जो मोक्ष-मार्ग की साधना करते हैं उन्हीं को हम साधु कहते हैं अर्थात् जब कोई आपत्ति आजावे तो उसे धैर्य के साथ सहता हुआ अपने नैतिक कर्मों को करता रहे। उसमें किसी प्रकार की अनियमता न हो। इन्द्रियां वशीभूत रहें। चारों कषायों को टालने वाला हो उसको हम साधु कहते हैं।

प्रश्न—पांच महाव्रत और चार कषाय कौनसे हैं ?

उत्तर १—अहिंसा (किसी जीव की हिंसा न करना)

२—सत्य (सत्यभाषण) ३-(अस्तेय) चोरी न करना अर्थात् अच्छिन्न वस्तु स्वामी की आज्ञा बिना न लेना। ४-(ब्रह्मचर्य) पूर्ण जितेन्द्रिय। ५-(त्याग) सर्व प्रकार का त्याग। ये ही पांच महा-

व्रत हैं और एक २ महाव्रत की पाच २ भावना हैं। पचीस भावनो और पाच महाव्रत जो साधु पाले वह साधु है तथा क्रोध, मान, माया, लोभ नामक चार कषाय हैं।

प्रश्न—अहिंसा व्रत से आपका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—प्रत्येक प्राणी पर मनसा, वाचा, तथा कर्मणा, दया रखना अर्थात् त्रस जीव जिसमें द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय वाले और स्थावर जिसमें पृथ्वीकाय (कची मिट्टी), अप्काय (पानी), तैजस्काय (अग्नि), वायुकाय (हवा), और वनस्पतिकाय (सब्जी के जीव) उपर्युक्त प्रकार के जीवों का न मारना अहिंसा कहलाता है। जो मनुष्य मनसा, वाचा तथा कर्मणा के द्वारा प्राणातिपात,-जीव की हिंसा से बचे, वह पहले महाव्रत-दया के पालने वाला है। अर्थात् वही साधु है जो स्वय जीवों को न मारे, न मारने की आज्ञा दे और न मारने वाले को अच्छा कहे

प्रश्न—दूसरा महाव्रत साधु को किस प्रकार पालना चाहिये ?

उत्तर—यह तो मनुष्यमात्र जानता है कि सत्य बोलना चाहिये परन्तु सत्य बोलते नहीं। साधु के लिये परमावश्यक है कि वह सत्य ही सत्य भाषण करे और वह सत्य भी ऐसा हो कि प्रिय हो, मधुर हो और उसका अन्तिम परिणाम भी सुन्दर और लाभदायक हो अर्थात् ऐसा वचन न बोले जो सर्वांश में सत्य तो हो पर सुनने में कटु हो जैसे लँगड़े को लँगडा और काणे को काणा

अन्धे को अन्धा कहना इत्यादि; और ऐसा वचन भी न बोले कि जिसमें जीव की हिंसा हो या किसी जीव को दुःख पहुँचे।

प्रश्न—तीसरे महाव्रत से आपका क्या मतलब है और जीवों पर दया उससे किस प्रकार हो सकती है?

उत्तर—स्वामी के बिना दिये वस्तु के लेने का त्याग करना ही अदत्तादान महाव्रत कहाता है। वह साधु के लिये तीन प्रकार का है। प्रथम अचित्त वस्तु-जो वस्तु साधु के लेने के योग्य है, जैसे लकडी, पत्थर, कपड़ा इत्यादि वस्तुओं को उनके स्वामी की आज्ञा बिना लेना सर्वथा चोरी है। इसका नाम स्वामी अदत्त है। दूसरे जो वस्तु (अचित्त) जीव रहित भी हो और उसका स्वामी उनको देने पर राजी भी हो परन्तु श्री तीर्थंकर भगवान् ने निषेध की हुई है फिर भी यदि साधु उस वस्तुको ले लेवे तो वहभी चोरीमें सम्मिलित है और उसका नाम 'तीर्थंकर आदत्त' है, तीसरे जो वस्तु "तरो दुःख है" अर्थात् वस्त्र आभूषण आदि जिनको उनका स्वामी देने के लिये तैयार हो और तीर्थंकर भगवान् ने मनाई भी न की हो परन्तु गुरु आज्ञा नहीं हो ऐसी वस्तु को भी यदि साधु ले तो वह भी चोरी कहाती है जिससे इसका नाम 'गुरु आदत' है, इस इस प्रकार तीन तरह का "आदत्त निषेध" है। यह सब साधन केवल दयाव्रत की ही रक्षा के लिये हैं। अतः इनको जो नहीं पालते, उनके दयाव्रत को दूषण लगता है क्योंकि लक्ष्मी (सम्पति) मनुष्यों का बाह्यप्राण है। जब कोई किसी की चोरी करता है।

वह अवश्य उसके प्राण ही का नाश करता है। इसलिए चोरी करना ही महा पाप है। सब प्रकार की चोरी का त्याग करना ही "अदत्तादान" त्यागरूप महाव्रत है।

प्रश्न—ब्रह्मचारी रहने से क्या आशय है ? और शील पालने के लिये साधु का क्या २ कर्त्तव्य है ?

उत्तर—दर्शन, स्पर्शन, एकान्त सेवन, भाषण, विषयकथा, परस्पर क्रीडा, विषय का ध्यान, इन आठ प्रकार के मैथुनों से स्वयं बचे तथा औरों को शिक्षा देकर इनसे बचाने का उपाय कराना ब्रह्मचारी कहाता है। जिस प्रकार एक चतुर कृषक अपने क्षेत्र की रक्षा के लिये उसके चारों ओर बाड़ लगा देता है, इसी प्रकार हमारे तीर्थंकरों ने ब्रह्मचारी को शील की रक्षा के लिये नौ प्रकार की बाड़े बताई हैं। जिससे ब्रह्मचारी को हानि न पहुँचे। ये बाड़े निम्नलिखित हैं—

बाढ़ १—जिस गृह में स्त्री, पशु और नपुंसक रहते हों वहाँ पर ब्रह्मचारी न रहे, क्योंकि उनके कामविकार की चेष्टा देखने से ब्रह्मचारी के मन में विकार उत्पन्न होगा। जिससे ब्रह्मचर्य में बाधा आवेगी। जैसे किसी घर में बिल्ली रहती हो, यदि वहाँ आकर चूहे रहें तो चूहों की जीवन-आशा कदापि नहीं होसकती। इसीलिये ऐसे गृहमें निवास न करे। साधु को जिस गृह म स्त्री का चित्र भी लगा हो, उसमें भी न रहना चाहिये।

बाढ़ २--स्त्रियों की हर समय कथा, वार्त्ता न करे, उनके आगे कहानी न कहे; अकेली (एकान्त) स्त्री को उपदेश तक भी न देवे, क्योंकि ये बातें राग उत्पन्न करने का कारण हैं और मन में विकार की चेष्टा उत्पन्न करती हैं। अतः ब्रह्मचारी को उचित है कि वह ये बातें न करे। यदि करेगा तो अवश्य अपने व्रत से च्युत हो जायगा। जिस प्रकार नीबू का नाम लेते ही प्रायः मुख में पानी भर आता है, बस इसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिये।

बाढ़ ३--स्त्री के साथ एक स्थान पर न बैठे और जिस स्थान या भूमि पर से स्त्री बैठ कर उठ जावे, वहाँ पर भी दो घडी तक ब्रह्मचारी न बैठे। क्योंकि उस स्थान में उस समय बैठने से स्त्री की स्मृति होती है और स्त्री के बैठने से आसन गरम मलीन हो जाता है। यदि स्त्री के स्पर्श किये हुये आसन को ब्रह्मचारी स्पर्श करेगा तो विकार उत्पन्न अवश्य ही होगा। जैसे किसी स्थान से अग्नि प्रज्वलित करके फिर उठा ली जावे और वहां फिर घृत रक्खा जावे तो पिघल जायगा। इसी प्रकार जिस स्थान से स्त्री उठ जावे वहाँ दो घड़ी पहिले बैठने से विकार उत्पन्न हो सकता है।

बाढ़ ४--ब्रह्मचारी को स्त्री के रंग, रूप, हाथ, पाँव, नासिका मुख इत्यादि की ओर दृष्टि गाढ़ कर और मग्न होकर नहीं देखना चाहिये। यदि अकस्मात् दृष्टि पड़ भी जावे तो शीघ्र उसे रोककर पीछे ध्यान न करे। क्योंकि जिस मनुष्य की आँखें दुखती हों वह यदि सूर्य या दर्पण की ओर दृष्टि करेगा तो उसे अवश्य

कष्ट सहन करना पडेगा। इसी तरह यदि ब्रह्मचारी स्त्री के अव यवों को देखेगा तो उसके ब्रह्मचर्य को अवश्य दूषण लगेगा।

वाद ५--ब्रह्मचारी ऐसे घर मे न रहे कि जहाँ से स्त्री का कामभोग का, रुदन का, उपहास्य आदि का शब्द कर्णगोचर हो। क्योंकि जिस प्रकार मयूर बादल की गरज सुनने से बड़ा प्रसन्न होता है और नृत्य करने लगता है। इसी प्रकार स्त्री की सासारिक बातें सुनने से पुरुष के कामदेव जागता है।

वाद ६--ब्रह्मचारी ने यदि गृहस्थावास में स्त्री के साथ काम भोग किया हो तो वह उन बातों का ध्यान न करे। यदि करेगा तो अवश्य काम की प्रबल इच्छा उसके उत्पन्न होगी। जैसे इस दृष्टान्त से विदित है कि--

एक नगर में दो राहगीर मनुष्य एक बढई के गृह मे रात्रि को रहे। बढ़ई ने रात्रि में ही छाछ बिलो कर उन अभ्यागतों को छाछ पिलाई, वे पीकर तुरन्त ही चले गये। कुछ थोडी देर बाद ही प्रात काल हुआ। बढ़ई, उस बर्तन में जिसमें छाछ बिलोई गई थी, साथ ही साँप को भी उसमें बिला हुआ देख कर शोकातुर हुआ। कालान्तर में वे दोनों राहगीर वापिस आये और बढ़ई से पूछने लगे कि-भाई तैने हम पहिचाना ? तथा वे उस तक का वर्णन सुनाने लगे। बढ़ई सुन कर विस्मित हो गया। और कहने लगा कि क्या तुम अभी तक जीवित हो ? साथही छाछमें साप बिलोये जानेका वृतान्त सुनाया यह सुन उनमें

से एक अभ्यागत के चित्त में भय पैदा हुआ और उसी दम मर गया। परन्तु द्वितीय ने कुछ ऐसा विचार नहीं किया। और न कुछ भय माना। इसलिये वह जीवित रहा। क्योंकि सर्प के विष का यह प्राकृतिक स्वभाव है कि वह स्मरण से चढता है। इसी प्रकार पूर्व के काम भोगों का स्मरण करने से ब्रह्मचर्य्य में बाधा अवश्य होती है।

बाढ ७—ब्रह्मचारी प्रति दिवस स्वादिष्ट भोजन अर्थात् दूध, घी, मिठाई, मलाई, रबडी इत्यादि बलवर्द्धक चीजें न खावे। यदि कदाचित् एक दिन खा लेवे तो दूसरे दिन अवश्यमेव व्रत करे। अर्थात् कुछ न खावे, यदि प्रतिदिन खाता रहेगा तो अवश्य कामदेव उदय होगा। क्योंकि प्रज्वलित अग्नि में ज्यों २ काष्ट डाला जाता है, त्यों त्यों अग्नि बढती जावेगी। इसी प्रकार ज्यों ज्यों स्वादिष्ट आहार ब्रह्मचारी करेगा, त्यों २ अवश्य काम की प्रबल इच्छा उसके बढती जायगी।

बाढ ८—ब्रह्मचारी शुष्क भिक्षा भी क्षुधा से अधिक न खाय क्योंकि अधिक भोजन करने से विकार उत्पन्न होता है, शरीर को कष्ट होता है, निद्रा अधिक आती है। जिसके कारण प्रार्थनोपासना भी सम्यक्तया नहीं हो सकती। अतः ब्रह्मचारी को अधिक भोजन न करना चाहिये। इसके अतिरिक्त यह प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि यदि सेर भर की हाडी में सवा सेर वस्तु भर दी जावे तो या तो हाडी ही फट जावेगी या वस्तु ऊपर को ऊफन कर

सत्यानाश में मिल जायगी। प्राय देखा जाता है कि थोड़ा सा भी अधिक भोजन करने से किसी किसी समय बड़े २ भयकर त्रिदु चिकाग्नि रोग तक हो जाते हैं। बस इसीलिये ब्रह्मचारी को अधिक भोजन नहीं करना चाहिये। अन्यथा उसे भारी हानि उठानी पड़ेगी।

बाड़ ६—ब्रह्मचारी को चाहिये कि शरीर का शृङ्गार न करे अर्थात् स्नान न करे, नेत्रों में सुरमा, शरीर पर अतर, फुलेल, साबुन न मले, कघी, पट्टी न करे। क्योंकि शृङ्गार और विषय में इतनी आकर्षण शक्ति है कि जितनी चुम्बक और लोहे में होती है।

यदि आप एक कोयले को रेशम या मखमल के वस्त्र में बाँध कर फेंक दें तो प्रत्येक का चित्त उसके उठाने को अवश्य करेगा इसी प्रकार यदि ब्रह्मचारी हार शृङ्गार करेगा तो जो स्त्री उसकी ओर देखेगी तो उसके कोमल चित्त में विषय-विकार उत्पन्न हो सक्ता है और स्वय मनुष्य का चित्त भी चलायमान हो सक्ता है इसलिये ब्रह्मचारी को कदापि किसी प्रकार का शरीर का शृङ्गार न करना चाहिये।

प्रश्न—उपरोक्त वार्त्ता से मालूम होता है कि आपके साधु स्नान तक भी नहीं करते ?

उत्तर—यह हम पूर्व में ही कह चुके हैं कि ब्रह्मचारी का हार-शृङ्गार-स्नान वर्जित है। यदि साधु स्नानादि करेगा तो स्वय शरीर

की सुन्दरता की ओर उसका ध्यान जायगा। स्नान आदि करना भोगियो का काम है, योगियों का नहीं। स्नान के विषय में देखिये हमारे शास्त्र की यह सम्मति है—

**"विभूसा वतिये भिक्खू, कम्म बधई चिक्कणम्।
ससारसागरे घोरे, जेण पडई दुरत्तरे॥"**

अर्थात् शरीर को सजाने वाला साधु वज्र कर्म बाँध कर ससार में ऐसे चक्कर खाता है कि फिर उसका उससे निकलना मुश्किल हो जाता है।

और भी कहा है—

"ब्रह्मचारी स्नानसदा शुचि।"

अर्थात ब्रह्मचारी विना स्नान किये भी पवित्र है।

यही नहीं काशी खण्ड में स्पष्ट लिखा है—

**"मृदो भारसहस्रेण, जलकुम्भशतानि च।
न शुद्धयन्ति दुराचारी, स्नानतीर्थशतैरपि॥"**

अर्थात् वार २ मिट्टी बदन को लगा कर और हजारों घडे पानी ऊपर डाल कर और सैकडों वार तीर्थों मे घूम फिर कर स्नान करो किन्तु तो भी दुराचारी मनुष्य पवित्र नहीं हो सकता।

गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने पाण्डुपुत्र से कहा है कि—

**"आत्मानदी सयमपुण्यतीर्था,
सत्योदका शीलतटादयोर्म्मि।**

तत्राभिषेक कुरु पाण्डुपुत्र !
न वारिणा शुद्धति चान्तरात्मा ॥"

अर्थात् हे पाडुपुत्र ! तू उस आत्मारूपी नदी में स्नान कर जो कि सयम पवित्र तीर्थ है, सत्य ही जिसम जल है, शीलही जिसका तट है और दयामय लहरे हैं, अन्तरात्मा जल से शुद्ध नहीं हो सकती।

बस उन बुद्धिहीन पुरुषों को कि जो यह कहते हैं कि तुम्हारे जैन-साधु स्नान नहीं करते, गलीज और मलीन रहते हैं और तुम्हारे शास्त्रजिनमें स्नान विधि नहीं लिखी, माननीय नहीं हो सक्ते, उन्हे श्रीकृष्ण महाराज के इस परमपावन पवित्र वचन को स्मरण करना चाहिये। बताइये इससे बढकर और वे क्या वाक्य हो सक्ते हैं कि जो स्नान के विषय मे इससे बढकर सम्मति दे। हमारे यहाँ तो सच्चा स्नान बताया है, दिखावटी नहीं। साधु के लिए सच्चा स्नान निम्न प्रकार का बताया गया है

१—जप करना।

२—तप करना।

३—इन्द्रियों को वश में रखना।

४—सर्व जीवों पर दया रखना।

बस सच्चे यही चार स्नान हैं। जल से मल मल कर कारबो लिक और पीयरसोप लगा २ कर चमडी को सफेद करना स्नान नहीं है। हाँ, यदि ऐसा बाह्याडम्बरी स्नान करके और रात्रिदिवस पानी में ही पड़े रहकर मनुष्य मुक्ति लाभ कर सकता है तो वे

मगर, मच्छ और मछलियां क्यों नहीं मुक्ति को प्राप्त हो जातीं, जिनका कि जलमें ही सदा निवास-स्थान हैं। और जलही जिनका प्राण है। बस इन हेतुओं से ज्ञात होता है कि ये सब ढकोसले हैं। यदि कोई मनुष्य मैले वस्त्र सन्दूक में बन्द करके सन्दूक को नदी में फेंक दे तो भीतर के वस्त्र कदापि उज्वल न होंगे। बस इसी प्रकार स्नान करने से केवल बाहरी शुद्धि होती है, भीतरी नहीं।

प्रश्न—आपका अपरिग्रहव्रत से क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, रूप, वस्तु की मोह, ममता, लालच का त्याग करने को अपरिग्रहव्रत कहते हैं। जिसकी ममता उपरोक्त वस्तुओं से हट जाय, उसको त्यागव्रत कह सकते हैं। जिसके पास कोई वस्तु नहीं और मन से त्यागी नहीं तो वह अपरिग्रहव्रत में सम्मिलित नहीं हो सकता। क्योंकि वह तो न होने का त्यागी है। जब उसके पास वस्तु होगी तो वह अवश्य उसे भोगेगा। यदि वस्तु के न होने पर पुरुष त्यागी माना जाय तब तो गधे, कुत्ते आदि भी त्यागी होने चाहिये। साधुओं के पास नाना प्रकार के धर्मसाधन के उपकरण शास्त्र, पात्र और वस्त्र होते हैं। किन्तु तब भी उनकी ममता उनमें नहीं है या दिन २ न्यून होती जाती है। इसलिये तीर्थंकर महाराजों ने उन उपकरणों को परिग्रह में सम्मिलित नहीं किया है, हाँ ! यदि उन उपकरणों पर साधु ममता करे तो उसके परिग्रह मानने में कुछ भी शंका नहीं है।

इन दश नियमों पर जितनी व्याख्या की जाय उतनी ही थोड़ा है। इन नियमों का बड़ा गूढ़ रहस्य है। पुस्तक के वृहद् हो जाने के कारण इनकी विशेष व्याख्या नहीं की जा सकती। जिनको विशेष जानने की उत्कण्ठा हो, वे जैनसूत्र में पूर्ण रूप से देख सकते हैं।

प्रश्न—अच्छा आपके साधु क्या २ वस्तु अपने पास रख सकते हैं?

उत्तर—सुवर्ण, चाँदी, सोना, रूपा, माणिक, मोती आदि धातुमात्र साधु को रखना सर्वथा निषिद्ध है। यही नहीं जैनसूत्रों में बड़ी उत्तमता के साथ यह भी लिखा है कि यदि साधु अपने पास एक सुई जो गृहस्थ से सीने के लिये लाये और उसको एक रात भी भूलकर अपने पास रखले तो उसको एक उपवास प्रायश्चित में करना चाहिये।

जब कि सुईमात्र का इतना प्रायश्चित है तो सोने की कमानी के चश्मे वगैरह अपने पास रक्खें, उनके लिये क्या प्रायश्चित होना चाहिये। पाठक स्वयं विचारें और एक कहावत भी है कि यदि सांसारिक जन अपने पास धनादि न होते हुए दुःखादि कष्टों को भुगतता हुआ ईश्वराराधन में चित्त नहीं देता और एक साधु जो धनादि होते हुए ईश्वराराधन करता है तो उनका एक सदृश ही फल होता है।

हमारे साधु अधिक से अधिक निम्नलिखित मुख्य वस्तुयें मूर्च्छाभाव बिना संयम पालने के निमित्त अपने पास रख सकते हैं।

१—पात्रगाहा (पात्र)
२—पाय बन्धन (पात्र बन्धन)
३—पायकसरिया (पात्रा के नीचे बिछाने का वस्त्र खण्ड)
४—पायट्ठवणं (पात्रों के नीचे बिछाने का वस्त्र)
५—पडला इतित्रिय (उपकरण विशेष तीन पडला)
६—रयत्ताण (राजत्राण)
७—गोच्छओ (पूंजनी)
८—१०—तिन्निय पच्छादगा (तीन चादर) यह दश तथा
११—रओहरण (रजोहरण ओघा प्रसिद्ध)
१२—पट्टक प्रसिद्ध ।
१३—मुहणंतग (मुख पर बांधने का वस्त्र ।
१४—मात्रिय (मात्रिकउ) बहिर्भूम्यादिक को ले जाने का पात्र ।

प्रश्न—जैन सूत्र में मुनि को आहार लेना और भोजन करना किस प्रकार लिखा है ।

उत्तर—साधु को चाहिये कि—

पुत्रैषणा ये च धनैषणाश्च, लोकैषणा ये च चरन्ति भिक्षाम्'

शत०, काण्ड १४ ॥

लोकम प्रतिष्ठा या लाभ धनसे भोग वा मान्य पुत्रादिके मोहसे साधु लोग (मुनिराज) भिक्षुक होकर मोक्षके साधने

मे तत्पर रहते हैं। जिस प्रकार गायें जगलमें चरनेको जाती हैं और वे हर जगहसे थोडी २ घास ऊपरसे खाकर पेट भरती हैं तैसेही मुनिभी वहुतसे घरोंमे थोडा २ आहार लाकर अपनी आत्माका निर्वाह करते हैं। भौरोंकी भाँति। ८-१० गृहस्थियों से प्रत्येक के यहासे अल्प २ भिक्षा मागकर उदरपूर्त्ति करनी चाहिये।

जहाँ आप्तोंके ये वाक्य साधुओंके विषयमें हैं वहा आज इसके विपरीत देखा जाता है कि आज गली २ कपडे रगे हुये नामधारी साधु भिक्षाही का व्यवसाय कर रहे हैं। उन्हें और कोई कार्यही नहीं वे केवल भिक्षा मागनाही कर्त्तव्य समझ तुलसी और कबीरके वाक्य लोगोंको सुना २ कर भिक्षा मागते हैं। प्राचीन समयमे भिक्षाका महत्त्व एक गौरवका विषय था। गृहस्थ के घरमें जब साधु आता था तो गृहस्थ वडे आदर और सत्कारसे उसको भिक्षा देकर सतुष्ट करते थे। परन्तु आज वे गृहस्थभी कल्पित नामधारी रँगे कपडे साधुओंसे घबडाकर उलटे हो गये हैं। द्वार २ पर कल्पित नामधारी साधु "लाओ माईजीकी आवाज लगा रहे हैं और घरमे कोई सुनताही नहीं। बस आज भिक्षाका यह ही अर्थ है। हम जहा अपने देशमें और २ सुधार कर रहे हैं, वहा सबसे पहले यही आवश्यकता है कि इन कोरे कपडे रगे साधुओंका भी सुधार करें। क्योंकि आज वे गृहस्थ जो मनुस्मृति के कथनानुसार--

"यथा नदीनदाः सर्वे, सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे, गृहस्थे च व्रजन्त्यपि॥"

सब आश्रमोंके निर्वाह करने वालेभी स्वयं इनके भारसे दुःखित हो रहे हैं।

प्रश्न—महाशयजी ! हमने सुना है कि आपके साधु रात्रिको पानी आदि जलसम्बन्धी कुछभी नहीं रखते तो शौच आदि कैसे करते होंगे।

उत्तर—आपका कहना यथार्थ है लेकिन पहिलेही जैनसूत्रोंमें यह लिखा है। जब सूर्य्य अस्त हो जावे उस समयसे उसके उदय होने तक साधु मनसे भी अन्नपान की इच्छा न करें और न रात्रि को अपने पास रक्खे। आपने जो कहा है कि यदि रात्रि के समय साधु को शौच की आवश्यकता हो तो वह किस प्रकार करे। इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो हमारे साधु सन्ध्या को आहार ही अति स्वल्प करते हैं और शरीर को पीछे लिखे नियमानुसार अपने वश में रखते हैं। हां, यदि संयोगवश कोई ऐसा कारण पड़ जावे कि आवश्यकता हो जावे तो विवश हैं क्योंकि शौचक्रिया के वेग को रोकना हानिकारक है। अतः येन केन उस समय शौच क्रिया कर लेते हैं। प्रातःकाल जलादिसे शुद्ध हो शास्त्रका विचार करते हैं। हमारे तीर्थंकर महाराजों की आज्ञा है कि दो मुनिराजसे कम बिलकुल किसी समयमें न रहें। क्योंकि जब किसी साधुको कोई ऐसा कारण पड़ जावे तो दूसरा उसकी सहायता तुरन्त करेगा। अब आप निम्न दृष्टान्तसे भली-भांति जान जायेंगे कि हमारे मुनिराजोंके लिये यह रीति शौच-

क्रिया निवृत्ति की विशेष दशा में सुगम है। इसके लिये एक दृष्टान्त है कि एक ब्राह्मण एक जङ्गलमें जा रहा है। उसके पास इस समय शास्त्र मूर्त्ति और भोजनकी सामग्री है। साथमें परिवारीजन नहीं हैं। उसको उसी समय शौचकी इच्छा हुई। परन्तु जलका अभाव और आगेको नहीं चल सकता। ऐसे समयमें उसका क्या कर्त्तव्य हो सकता है? केवल यही कि वह इस जङ्गलमें बैठ शौच निवृत्ति करले। शौच होकर बताइये वह मूर्ति शास्त्र और भोजन सामग्रीको साथ लेजायगा या नहीं? नहीं २, वह अपनी मूर्त्ति और शास्त्र को नहीं छोड़ सकता है। बस हमारे साधुओंको भी वह रात्रि उस जङ्गल तादृशही है। वे यदि ऐसे समय वस्त्र या रेत अथवा किसी अन्य प्रकार शुद्धि करलें तो उसमें कोई निन्दास्पद बात नहीं है।

प्रश्न—हमने सुना है कि आपके साधु शौच कर जङ्गलमें जाकर जलसे शुद्धि नहीं करते।

उत्तर प्यारे बन्धु! कहीं झूठ बोलने वालोंका भी मुखबन्द किया जा सकता है? झूठ बोलने वाले झूठ बोलेंगे ही। हमारा सिद्धान्त तो यह है कि —

> 'ददतु ददतु गालो गालिमन्तो भवन्त',
> वयमिह तदभावे नैव दातु समर्था।
> जगति विदितमे तद्दीयते विद्यमान मामत्,
> नहिं शश विषाण को ऽपि कस्मै ददाति॥"

अर्थात् वे गाली देनेवाले हैं, क्योंकि वे देतेहैं। हम तो गाली देनेमें असमर्थ हैं। जगत्‌में यह बात प्रसिद्ध ही है कि जो वस्तु जिसके पास होती है, वही देता है। क्या आप नहीं जानते कि शशकको सींग कौन दे सक्ता है? बहुत से स्वार्थांध मनुष्यों नेजैनधर्म पर नाना प्रकारकी कुरीतियोंका दोषारोपण किया है। वे जब चारों ओर सूर्यवत् पवित्र जैनधर्मका डंका बजते और अपनी पोल खुली हुई देखते हैं तो सिवाय इसके कि ईर्षाके वशीभूत हो उसकी निन्दा करें और कर ही क्या सकते हैं? ऐसे मनुष्य अपने स्वार्थान्धतामें मस्त हुए अपनी ओर कुछ भी नहीं देखते। आप जानतेही हैं कि "स्वार्थी दोष न पश्यति" हमारे सूत्रोंमें तो स्पष्टरूपसे लिखा है कि जब मुनि शौचनिवृत्तिको जंगल जावे तो जल अवश्य ले जावे तथा जलका पात्र जंगल बैठनेकी जगहसे तीन कदम दूर रक्खे जब शौच हो तो ——— पात्र लेकर शुद्ध हों। बिना शुद्ध हुए हमारे ‑ शास्त्र पढ़नेकी आज्ञा नहीं है। जो साधु ‑ शास्त्र पढ़ें उसके लिए तीर्थंकर ‑ (दिवसका व्रत) का विधान किया लिखा देख सकते हैं आप जरा में ऐसा घृणित और अनुचित

प्रश्न—भला यह तो नहीं चलते।

उत्तर--कुछ मनुष्योंका ऐसा विचार है कि जैन साधु लकीर परस नहीं चलते और मूर्खतासे लकीरभी खींच देते हैं। यह केवल उनकी मूर्खता है। हमारे मुनिराजोंको ऐसी लकीरोंकी कुछ भी परवा नहीं है। चाहे कोई हजारों लकीर खींच दें वे कदापि चलनेसे नहीं रुकते। ऐसी बातोंका रहस्य यदि वे जैनसूत्रोंको सुने तो ज्ञात हो। हमारे साधु निम्न लकीरों (रेखा नियम) को उल्लंघना नहीं करते, जो कि किसी साधुको भी कदापि उल्लघन नहीं करनी चाहिये।

१--जीव पर दया।

२—मिथ्याभाषण का त्याग।

३—चोरी का त्याग।

४—स्त्री मात्रको माता, भगिनी समझना।

५—धनादि का त्याग।

महाशय! मैं आपको इन बातोंको सुनकर आज अति अनुगृहीत हुआ। मैंने अबतक आपके जैनधर्मके विपयमें बडी २ किम्बदन्तियां * सुनी थीं। हा! विशेपकर स्नानके विषयमें मुझे आपसे बहुतही अप्टक था जो आपने हमारे माननीय गीता ग्रन्थके प्रमाणसे सर्वथा भ्रमको दूर कर दिया किन्तु तबभी मैं दो एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि आप लोग दान नहीं करते?

---

* एसा किम्बदन्तियों का उत्तर जिन्हें विशेष रूप से देखना हो वह "जगत-भ्रमोच्छेदन" जिसका मूल्य दो आने है हमसे मंगाकर पढ़ें।

अर्थात् वे गाली देनेवाले हैं, क्योंकि वे देतेही हैं। हम तो गाली देनेमें असमर्थ हैं। जगत्में यह बात प्रसिद्ध ही है कि जो वस्तु जिसके पास होती है, वही देता है। क्या आप नहीं जानते कि शशकको सींग कौन द सकता है ? बहुत से स्वार्थी व मनुष्यों ने जैनधर्म पर नाना प्रकारकी कुरीतियोंका दोषारोपण किया है। वे जब चारों ओर सूर्यवत् पवित्र जैनधर्मका डंका बजते और अपनी पोल खुली हुई दखते हैं तो सिवाय इसके कि ईर्षाके वशीभूत हो उसकी निन्दा करें और कर ही क्या सकते हैं ? ऐसे मनुष्य अपन स्वार्थवशमें मस्त हुए अपनी ओर कुछ भी नहीं दखते। आप जानतेही हैं कि "स्वार्थी दोष न पश्यति" हमारे सूत्रोंमें तो स्पष्टरूपसे लिखा है कि जब मुनि शौचनिवृत्तिको जगल जावे तो जल अवश्य ले जावे तथा जलका पात्र जगल बैठनकी जगहसे तीन कदम दूर रक्खे जब शौच हो तो। जलका पात्र लकर शुद्ध हो। बिना शुद्ध हुए हमारे शास्त्रोंमें साधुको शास्त्र पढ़नका आज्ञा नहीं है। जो साधु बिना शुद्ध हुएही शास्त्र पढ़े उसके लिए तीर्थंकर महाराजने चोलेका दण्ड (चार दिवसका व्रत) का विधान किया है। आप स्वयमी 'जैनसूत्रोंमें लिखा दख सकते हैं आप जरा सोचिए कि पवित्र सनातन जैनधर्म में ऐसा घृणित और अनुचित व्यवहार कैसे हो सकता है।

प्रश्न—भला य भी बताइये कि आपके साधु लकीर परमे क्यों नहीं चलते।

उत्तर--कुछ मनुष्योंका ऐसा विचार है कि जैन साधु लकीर परसे नहीं चलते और मूर्खवासे लकीरभी खींच देते हैं। यह केवल उनकी मूर्खता है। हमारे मुनिराजोंको ऐसी लकीरोंकी कुछ-भी परवा नहीं है। चाहे कोई हजारों लकीर खेंच दें वे कदापि चलनेसे नहीं रुकते। ऐसी बातोंका रहस्य यदि वे जैनसूत्रोंको सुने तो ज्ञात हो। हमारे साधु निम्न लकीरों (रेखा नियम) को उल्लंघना नहीं करते, जो कि किसी साधुको भी कदापि उल्लघन नहीं करनी चाहिये।

१--जीव पर दया।
२--मिथ्याभाषण का त्याग।
३--चोरी का त्याग।
४--स्त्री मात्रको माता, भगिनी समझना।
५--धनादि का त्याग।

महाशय! मैं आपको इन बातोंको सुनकर आज अति अनुगृहीत हुआ। मैंने अबतक आपके जैनधर्मके विषयमें बडी २ किम्वदन्तियां * सुनी थीं। हा! विशेषकर स्नानके विषयमें मुझे आपसे बहुतही सन्देह था जो आपने हमारे माननीय गीता ग्रन्थके प्रमाणसे सर्वथा भ्रमको दूर कर दिया किन्तु तबभी मैं दो एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि आप लोग दान नहीं करते?

* ऐसी किम्वदन्तियों का उत्तर जिन्हें विशेष रूप से देखना हो वह "जगत-भ्रमोच्छेदन" जिसका मूल्य दो आने है हमसे मंगाकर पढ़ें।

उत्तर—आपने अभी हमारे जैनसूत्र नहीं पढ़े और न दूसरोंसे सुने। हमारे यहांका दानको जैनके मुख्य नवतत्त्वोंमें रक्खा गया है उन नवतत्वोंमे दानका तीसरा स्थान है। नवतत्त्वका हमारे यहां सबसे उत्तम विचार माने गये हैं। हम लोग दान नहीं करते। यह जिसने आपसे कहा है उसनेबड़ीही भूलकी है दान देना हमारे जैनसूत्रोंमें सर्वोत्तम स्थान है। हमारे तीर्थंकर महाराजही जब दीक्षा लेते हैं, जब कि एक वर्ष तक प्रथम खुब दान दे लेते हैं तब कहीं मुनिराज होते हैं। हमारे बहुतसे जैन धर्मावलम्बी भाइयोंने जगह जगह और शहर शहरमें एक एक दो दो धर्मशाला, पिंजरा पोल या दानशाला खोल रक्खी हैं। कई हमारे बोर्डिंग होम, छात्राश्रम हैं। कई स्थानों पर अनाथालय खुले हुये हैं और स्वयं भी जैनधर्मावलम्बी बहुत दान करते हैं। बहुतसी सामयिक घटनाओं (बाढ़ और अकाल आदि) परभी जैनो जहां तक हो सकता है, सहायता करते हैं। जैनधर्ममें हर समयही दान करना लिखा है। आपने भी सुना होगा कि हैदराबाद निवासी राजा बहादुर ला० सुखदेवसहायजी ने,छोटी सादरी के सेठ नाथूलालजी गोदावत ने ब्यावर के रायबहादुर सेठ कुन्दनमलजी कोठारी ने और बम्बई के सेठ मेघजी भाई थोभण ने जिनकी मृत्यु हो चुकी है, उन्होंने अपने जीवनकालमें लाखों रुपया दान किया और मरते मरते भी लाखों रुपया अनाथोंकी शिक्षा और।उनके पालनार्थ दे गये हैं और आज भी उनकी सन्तान ला० ज्वालाप्रसादजी सेठ छगनमलजी सेठलालचन्दजी तथा बीकानेर के प्रसिद्ध सेठ

अगरचन्दजी भैरोंदानजी सेठिया भीनासर के सेठ कनीरामजी बांठिया आदि दान वीर लाखों रुपया दान कर रहे हैं वस जैनधर्म्मावलम्बी ऐसाही सात्विक दान करते हैं। वे ऊटपटांग योंही नहीं फेंक देते। हमारे जैनसूत्रोंमें कुपात्रको दान देनेका निषेध है। जैनसूत्रों में निम्न भांतिके मनुष्य कुपात्र बताये गये हैं—

छली, कपटी, क्रोधी, लोभी, मोही, स्वार्थी, कामी, द्रोही, मिथ्यावादी, आलसी (प्रमादी) असन्तापी।

दातासे बार २ मांगने वाला जो न दे उसको गाली देने वाला, जो सर्वदा दान देता हो और एक दिन न दे तो उसको गाली देने वाला, अपने पास हो फिरभी मांगनेवाला, जीवहिंसा करने वाला, मद्य मांसका सेवी, जुआ खेलने वाला, वेश्यागामी आदि आदि।

क्योंकि जैसे कोई पत्थरकी नावमें बैठेगा तो वह अवश्यही डूबेगा।

यही नहीं "गरुड़पुराण"में लिखा है कि जो कुपात्रको दान देता है, वह नरकमें जाता है। इसी प्रकार मनुस्मृतिमें भी लिखा है कि "कुपात्रको दान देना मानों उलटा नरकमें पड़ना है।"

इसी प्रकार भागवत स्कन्द सप्तमाध्यायमें कुपात्रको दान देने का निषेध किया गया है। बस आप समझ लीजिये जैनसूत्रभी इसी प्रकार कुपात्रको दान देनेका निषेध और सुपात्रको देनेका समर्थन करते हैं। इस विषयमें हम आपको एक दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं—

एक मासमें तीस रात्रियां होती हैं। उनमें एक पूर्णमासीकी और एक अमावस्याकी रात्रि होती है। और सब बची हुई रात्रियोंमें किसीमें प्रकाशकी अधिकता और किसीमें न्यूनता होती है। इसी प्रकार जो दान मन्त, महात्मा, त्यागी, पांच महाव्रतके पालने वालेको दिया जाता है, वह पूर्णमासीकी रात्रिके समान है अर्थात् पूर्णमा चारों ओर प्रकाशही प्रकाश या लाभही लाभ है। और वेश्यासे प्रीति करने वाला, कसाई, मद्य मांसका सेवी, शिकार आदि खेलने वाले कुकर्मी इत्यादिको दान देना अमावस्याकी रात्रिके सदृश है अर्थात् जिधर देखिये उधरही अन्धकार (पाप) छाया हुआ है।

अब आप समझ गये होंगे कि जैनधर्मावलम्बी कैसे दानका निषेध करते हैं। और कैसे उसका समर्थन जैनी बिलकुल भी दानका निषेध नहीं करते हैं। बरन् खूब हाथ बढ़ा २ कर देते हैं। आज यदि आप देखेंगे कि दुनियामें जितनी जातियां हैं, वे कितना दान करती हैं तो सर्वोपरि इस जैनजातिको ही पावेंगे हां। जैनधर्म इस बातको डंकेकी चोट कहता है कि कुपात्रको दान न देना चाहिये। अब आप उन मूर्ख और निर्बुद्धि पुरुषोंकी बातों पर विश्वास न कीजिये जो केवल कोई हेतु न देकर योंही मनमें आया सोही इधर उधर उड़ाने लगे। वे जैनधर्मके सूर्यवत् प्रकाशको न देख चौंधिया जाते हैं। बस आप अब निश्चय समझिये कि जैनधर्म दानके विषयमें —

"देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्विकं स्मृतम् ।"
का ही अपना उद्देश्य समझता है ।

श्रीमान् मन्त्रीजी आपने जो मेरे प्रश्नोंका समाधान किया है। इसलिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ लेकिन एक शंका और है उसको कृपाकर और समाधान कीजिये।

प्रश्न--सनातन जैनके ही साधु मुख पर एक कपड़ासा क्यों लगाये रहते हैं ?

उत्तर--श्रीमान् मैंने कोई ऐसा कार्य्य धन्यवादके योग्य नहीं किया। मेरा तो यह कर्त्तव्यही है कि सार्वजनिकमें जो जैनकी किम्वदन्तिया उड़ रही हैं, उनको दूर करके जैनधर्मको सर्वप्रिय बनाऊ इस आपके प्रश्नका पूर्णरूपसे खुलासा तो किसी अवसरपर करूंगा लेकिन जो वस्त्र कि हमारे साधु मुनिराज मुहपर बाधते हैं, वह हमारे सनातन साधुओंका प्राचीन भेष है। देखो शिव-पुराण, पृष्ठ ५५, श्लोक २४

"हस्ते पात्र दधानाश्च, तुंडे वस्त्रस्य धारकाः ।
मलिनान्येववासासि, धारयन्तो यल्पा भाषिण ॥"

इसके अतिरिक्त और भी इससे* लाभ हैं। जो किसी अन्य अवसर पर आपको बताऊंगा। लेकिन श्वेताम्बर सनातन जैनके साधु वही हैं जो इस भेषको धारण करते हैं और तो नामधारी हैं।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

---

* जिन्हें इस सम्बन्ध में विशेष देखना हो वह उद्घोषणा नाम की पुस्तक जो शीघ्र प्रकाशित हो रही है देखें।

अब इधर उधर भटकने की जरूरत नहीं है

१—जैन धर्म के प्रेमियों की सेवा में हम यह निवेदन करते हैं कि हमने अपने यहाँ पर प्रसिद्ध प्रसिद्ध जैन पुस्तक निर्मेताओं की पुस्तकें मगा कर बिक्री के लिये रखने का प्रवन्ध किया है इसलिये जब कभी आपको किसी भी प्रकार की पुस्तक की आवश्यकता पड़े आप एक बार हमसे अवश्य पूछ लें।

इस समय नीचे लिखी पुस्तकें बिक्री को हैं—

१—उपासक दशा सूत्र मूल और हिन्दी भावार्थ सहित। हर एक श्रावक को अपने पास रखना चाहिये। सजिल्द मूल्य१।)

२—सम्यक्त्व सूर्योदय जैन। अर्थात् आर्यसमाज के हर एक आक्षेप का मुंहतोड़ उत्तर मूल्य सजिल्द १)

३—मिथ्यात्वखंडन (अंग्रेजी) मूल्य १) रु० यह पुस्तक बड़ीही उपयोगी है इसमे जैनधर्मपर होने वाले सभी आक्षेपोंका मुंह तोड़ उत्तर दिया गया है। अनेक वकील, बैरिस्टर और सरकारी आफिसरों ने तथा कालेज के प्रोफेसरों ने इसकी प्रशंसा की है। जिन २ जैन संस्थाओं में अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती है उनके लिये तथा अंग्रेजी जानने वालों में जैन धर्म का ज्ञान कराने का यह बड़ी उपयोगी पुस्तक है।

४—जगत् भ्रमोच्छेदन अर्थात् सत्यप्रकाश मूल्य =)

हमने केवल अजैनों में जैनधर्म के प्रचार के हेतु अपने यहां से समय २ पर बहुत ही सस्ती पुस्तकों के निकालने का निश्चय किया है उसी के अनुसार हमने यह पहिली पुस्तक जो ८० पृष्ठोंमें

ऊपर की है प्रकाशित की है। ऐसी पुस्तकों की जैनों में प्रचार की बडी भारी आवश्यक्ता समझ कर ही हम इसको श्री तपस्वीजी माधवमुनीजी महाराज की कृपासे लागत मात्र मूल्यसे भी कममें दे रहे हैं अर्थात् हम इतनी बडी पुस्तक का मूल्य हमने केवल दो आना रक्खा है जो इसकी छपाई सफाई और शुद्धाई की सुन्दरता को देखते हुए कुछ भी नहीं है।

इसके अलावा नीचे लिखी उपयोगी पुस्तकें भी हमारे यहां से मँगाइये:—

५—श्री आवश्यक सूत्र ।।।) ६—वर्द्धमानचरित्र ।।।) ७—ज्ञान दीपिका ।।।) ८—दण्डी दम्भ दर्पण ।।) ९—ब्रह्मचर्य दिग्दर्शन ।-) १०—पचास बोल का थोकडा —) ११—चौबीसी पद —)। १२—मनोहर पुष्प ≡) १३—नगरधर्मोन्द्रेर्ते अर्थात् सत्यप्रकाश =) १४—जैनधर्म की प्राचीनता —) १५—जैन भजनभूषण प्रथम भाग —) १६—मोक्ष की कुञ्जी =) १७—स्तवन तरङ्गिणी =) १८—जैन धर्म के नियम)॥ १९—अमर धर्मोच्छेदन)। २०—शील रक्षा =) २१—मूल्यवान मोती ≡)॥ २२—जैनदर्शन और जैनधर्म)॥ २३—मुक्ति सुपानि ।-)। २४—पचीस बोल का थोकडा तथा छत्तीस द्वार ।।=) २५—श्री सामायिक सूत्र)।।। २६—उपयमसरयणमाला ≡) २७—श्री समस्या पति सुमनमाला मूल्य ≡)

इनके अलावा और भी सब प्रकार की पुस्तकें हमारे यहां मिलना हैं, पता मूँगाकर मँगाइये।

पता—
जैन पुस्तक भण्डार,
२१२, मानपाडा, आगरा।